साहित्य और पढ़ना सीखना के इर्द-गिर्द कुछ बातें

सुशील शुक्ल

शिक्षा के अधिकार के मिल जाने से अब हमारी आँखों ने इस सपने के लिए तो जगह बनानी शुरू कर दी है कि अपने देश का हर बच्चा आने वाले चार-पाँच सालों में स्कूल में प्रवेश पा सकेगा। पर हम अपने ज़्यादातर स्कूलों को बच्चों के लिए एक सुखद जगह में नहीं ढाल पाए हैं। नित नया सीखने के उत्साह से भरे बच्चे एक दिन स्कूल में प्रवेश लेने के लिए घर से निकलते हैं। उस घर से जहाँ उन्हें प्रश्न पूछने की, अपने मन का कुछ करने की, ज़िद करने की, लाड़-दुलार की, मान-मनौव्वल की सीमित ही सही, पर आज़ादी हासिल होती है। सामाजिक-आर्थिक रूप से कमज़ोर घरों में बच्चों की ज़िन्दगी इतनी सुखद भले ही नहीं होगी पर वे घर पर एक अत्यन्त सक्रिय सदस्य की भूमिका निभा रहे होते हैं। जहाँ मध्यमवर्गीय बच्चे घर के कामों का खेल खेलते हैं, वहाँ ये बच्चे सचमुच घर के कामों में हाथ बँटा रहे होते हैं। पर इन दोनों ही तरह के बच्चों को स्कूल पहुँचकर निराशा हाथ लगती है। उनके तमाम अनुभव स्कूल में किसी काम नहीं आते। स्कूल इन तमाम अनुभवों को नज़रअन्दाज़ कर, पोंछकर पढ़ाई शुरू करता नज़र आता है। अपने जीवन में भाषा से अच्छा खासा काम चला रहे बच्चे को - अ - से पढ़ना शुरू करना होता है। एक तरह से स्कूल उसके जीवन के चार-पाँच सालों को ही नज़रअन्दाज़ कर देता है। और फिर स्कूल में बच्चों का पुनर्जन्म होता है। एक-एक बच्चे का दुहरा जीवन शुरू होता है - स्कूल का जीवन और स्कूल से बाहर का जीवन। इन दोनों जीवनों में कोई संवाद नहीं होता।

बच्चे की भाषा बनाम स्कूली भाषा

फिर शुरू होती है स्कूली जीवन के सबसे दुखदाई और कठिन काम की शुरुआत। पढ़ना सीखने की शुरुआत। स्कूल में रोज़-रोज़ एक जीवन शुरू होता है जिसमें बच्चे को हर पल इस बात का अहसास दिलाया जाता है कि उसे क्या-क्या नहीं आता। बच्चे शायद कहना चाहते हैं कि उन्हें हाथी

पढ़ना नहीं आता पर वे हाथी के बारे में सुनी एक पूरी कहानी सुना सकते हैं। पर स्कूल के बोर्ड पर लिखा **हाथी** कहानी के हाथी को पहचानने से इन्कार कर देता है। धीरे-धीरे जीवन के तमाम अनुभव, समझ, तर्क सब स्कूल में आते ही सूख जाते हैं। स्कूली पढ़ाई अब बच्चों के अनुभवों को झंकृत नहीं करती बल्कि वह एक जानकारी की तरह याद रह जाने लगती है। और पढ़ने का काम व्यर्थ लगने लगता है।

पढ़ना सिखाने का काम आसान भले ही न हो पर उसे रोमांचक, रुचिकर बनाया जा सकता है। सबसे पहली शर्त तो बच्चे के पूर्व ज्ञान, उसके अनुभव, उसकी भाषा को मान्यता देने की है। यह मान्यता ही वह एकमात्र बिन्दु हो सकती है जहाँ से चलकर पढ़ना सीखने की तरफ कोई रास्ता जाता है। पढ़ना सिखाने की शुरुआत किस्से-कहानियाँ सुनने-सुनाने से हो तो बेहतर। क्योंकि तब बच्चे अपने तमाम अनुभव के साथ आपकी बात सुनने तथा अपनी सुनाने के लिए प्रस्तुत हो सकेंगे। यह दुतरफा मामला बच्चों में शुरुआती विश्वास पैदा करेगा। इस विश्वास पर पाँव रखकर ही बच्चे उन अनजानी, अमूर्त आकृतियों से जूझने चले आएँगे जो पढ़ना सीखने के रास्ते में आएँगी। यही विश्वास उन्हें अन्दाज़, अनुमान लगाने की हिम्मत देगा जो पढ़ना सीखने में आगे एक प्रमुख औज़ार साबित हो सकता है।

किस्से-कहानियाँ किताबों से सुनाने की पहल हो सकती है। इसके लिए साहित्य के चुनाव में थोड़ी-बहुत सावधानी रखने की ज़रूरत होगी। एक शिक्षक जो बच्चों से किस्से-कहानियाँ सुन चुका होगा, उन्हें किस्से कहानियाँ सुना चुका होगा, उसे इस बात का अन्दाज़ा लगाने में ज़्यादा मुश्किल नहीं जाएगी कि किस किस्म का साहित्य बच्चों को आकर्षित करेगा। फिर भी शुरुआती तौर पर साहित्य ऐसा हो जिसमें बच्चों के द्वन्द्व, अनुभव,

चित्रः अतनु राय

कल्पना आदि शामिल हों। बाल-पात्रों से बच्चे खुद को ज़्यादा जोड़ पाते होंगे इसलिए शुरुआत में इस बात का ख्याल रखना शायद कारगर साबित हो। पर किस्से-कहानियों के बच्चे सक्रिय होने चाहिए – कहानी में पेश घटना में सक्रिय रूप से शामिल।

पढ़ना सीखना और शुरुआती साहित्य

हम सालों-साल बच्चों को वर्णमाला से पढ़ना सिखाते रहे। अक्षर ज्ञान और उसे जोड़कर शब्द को उसकी ध्वनि के साथ पहचानने भर से हमारी पढ़ने की परिभाषा बन जाती रही। अर्थ तक पहुँचने और पढ़ने का आनन्द पाने की कड़ी, पढ़ना सीखने की प्रक्रिया से गुम रही। हमें कभी इस शुरुआती दौर के लिए साहित्य की ज़रूरत पेश ही नहीं आई। इसलिए हमारे पास आज बेहतरीन 100-200 किताबें उन बच्चों के लिए नहीं हैं जो पढ़ना सीखना शुरू कर रहे हैं। एक ऐसी छोटी किताब जिसे पढ़कर न सिर्फ बच्चे के अनुभव झनझना जाएँ बल्कि वह आत्मविश्वास से भी भर जाए कि उसने एक किताब पूरी पढ़ डाली है।

आम तौर पर पढ़ना सीख रहे बच्चों को ध्यान में रखकर कृत्रिम किस्म की चित्रकथाएँ तैयार की जाती हैं। कहानियाँ जो मात्र एक विवरण बन कर रह जाती हैं। जिनमें कोई मोड़ नहीं आता, कोई तनाव पैदा नहीं होता। कोई कशमकश पाठक को हासिल नहीं होती। न किसी तर्क की ज़रूरत पड़ती है, न कोई कल्पना की उड़ान का आनन्द व रोमांच हासिल होता है। असल में ऐसे साहित्य से भाषा का अपना काम भी पूरा नहीं होता। भाषा सिर्फ किसी बात को संप्रेषित ही नहीं करती बल्कि वह कल्पना में, किसी चीज़ को महसूस करने में, किसी चीज़ से जुड़ने में, सोचने में, तर्क करने में काम आती है। यही भाषा की बड़ी भूमिकाएँ समझी भी जाती हैं। साहित्य में भाषा अकसर अपनी इन सब भूमिकाओं के साथ सामने आती है। यानी पढ़ना सिखाने में साहित्य की बेहद उपयोगी भूमिका हो सकती है। यह महत्वपूर्ण है कि एक कहानी जो बच्चों को सुनाई जा रही है उसमें बच्चों को तर्क करने, कल्पना करने, किसी चीज़ से जुड़ने के कितने अवसर मिल रहे हैं।

अच्छे साहित्य में पाठक के लिए जगह-जगह प्रवेश करने, उसमें शामिल होने की रिक्त जगहें होती हैं। कहानी सुनाते हुए शिक्षक तथा कहानी सुनते हुए बच्चे इन जगहों में प्रवेश करके साहित्य का आनन्द लेते हैं। साहित्य की यही गुंजाइशें एक ही कहानी को बार-बार थोड़े-से फेर-बदल के साथ सुनने का रोमांच बनाए रखती हैं। पढ़ना सीख रहे बच्चों के लिए यह न सिर्फ एक रियाज़ होता है बल्कि वे पिछली बार सुनी हुई बात का एक तरह से परीक्षण भी बार-बार सुनकर करते हैं। पढ़ने के दौरान पिछली बार सुनी कहानी में आगे क्या होगा इस

बात का अन्दाज़ा लगाकर उसे डीकोड कर लेने का आनन्द भी पाते हैं। ऐसी छोटी-छोटी बातें उनके पढ़ना सीखने के सफर को कुछ रोचक बनाए रखती हैं। एक कहानी जो 'एक चालाक लोमड़ी थी' से शुरू होती है वह इन सब अवसरों को, सम्भावनाओं को कुचल डालती है। आम तौर पर इस तरह के वाक्यों से भरी कहानियों में पाठक को डीकोड करने के लिए ज़्यादा कुछ नहीं होता है।

साहित्य पाठकों को कुछ समय के लिए मुक्त भी करता है। पढ़ते समय एक पाठक अपनी दुनिया, पहचान को थोड़ी देर के लिए लगभग स्थगित कर कहानी या कविता की दुनिया में प्रवेश करता है। वह किरदारों से जुड़ जाता है। कभी वह उनके ऐवज में या कभी उनके साथ कहानी में आई चुनौतियों का सामना करने लग जाता है। एक ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए अनायास ही तैयार हो जाता है जो कहानी में चल रही होती है। एक तरह से यह समय बच्चों को - जो अकसर आज़ादी के लिए तड़पते रहते हैं - बहुत रास आता है। कहानी की दुनिया में उन पर कोई बन्दिश नहीं होती। वे जैसा चाहें अर्थ लगाएँ, जो चाहें फैसला करें। जिसे चाहें ठीक समझें। जिस किरदार के साथ चाहें

नितिन के. डेविड, 6 वर्ष, केरल

खड़े हो जाएँ। अच्छी कहानी या कविता बार-बार नियमों-कायदों को तोड़कर उनके पार चली जाती है।

बच्चों को शायद साहित्य के उक्त गुण आकर्षित करते हैं। पढ़ना सीख रहे बच्चों को साहित्य की यह तासीर खींचती है। वे इन अनुभवों से गुज़रने के लिए पढ़ने की तरफ आकर्षित होते हैं। साहित्य का काम यहीं खत्म नहीं हो जाता। वह कहानी के पढ़ लेने के बाद भी पाठक के भीतर जारी रहता

है। और अनजाने ही भाषा की मरम्मत चलती रहती है।

साहित्य में उनकी मौजूदगी

बच्चों के लिए बहुतायत में कविताएँ लिखी जाती हैं। पर उनमें साहित्य के ये गुण गुम रहते हैं। रटे-रटाए विषयों पर महज़ तुकबन्दी साध कर लिखी गई कविताओं से बच्चे खुद को जोड़ नहीं पाते हैं। कविता का एक गुण उसकी अनप्रेडिक्टिबिलिटी होती है। ऐसी कविताएँ पढ़ना सीख रहे बच्चों को शायद उतनी मदद न कर पाएँ। पर कविताएँ अगर किसी घटना पर आधारित होंगी तो बच्चों को कविता में चल रही कहानी दोगुना मज़ा दे सकती है। पढ़ना सीखने में अनुमान का महत्व बेहद है। इस तरह की कविताओं में पाठकों को दो तरह से अनुमान लगाने में सहायता मिलती है। एक तो कविता का ढाँचा उन्हें मदद करता है, दूसरा कविता में चल रहा घटनाक्रम अनुमान लगाने में मदद करेगा। इस तरह वे कविता के फॉर्म की खूबसूरती का भी आनन्द उठा पाएँगे और उसमें चल रही घटना का अनुभव भी ले पाएँगे।

बच्चों के लिए खास तौर पर हिन्दी में जो साहित्य लिखा जा रहा है उसमें से ज़्यादातर बेहद सपाट है। उसमें बच्चों की अपनी दुनिया, जिसमें वे रह रहे हैं, की कोई झलक नहीं मिलती। साहित्य में बच्चों के सामने एक बनावटी दुनिया सामने आती रहती है। बच्चों के द्वन्द्व, संघर्ष, कल्पनाओं की इसमें कोई जगह नहीं है। क्या बच्चे ऐसे साहित्य से खुद को जोड़ पाते होंगे? अधिकतर बाल साहित्य में मध्यमवर्गीय पारम्परिक हिन्दू जीवन-शैली का गान दिखता है। क्या यह बात सामाजिक-आर्थिक रूप से कमज़ोर पृष्ठभूमि के बच्चों के पढ़ना सीखने के संघर्ष में कुछ और इज़ाफा नहीं कर देती होगी? उनकी जीवन-शैली व मूल्यों के प्रति यह साहित्य कितना संवेदनशील बना रहता होगा? पढ़ना सीखना तब कुछ आसान हो सकता है जब पढ़े या सुने जा रहे साहित्य में पाठक शामिल हो पाए। पढ़ी हुई सामग्री बच्चे के अनुभव से जुड़कर मन को तरंगित करे। अर्थ-निर्माण तक पहुँचकर ही तो पढ़ना सीखने का सफर पूरा होता है। यानी पढ़ना सीख रहे पाठकों के लिए शुरुआती दौर में ऐसा साहित्य मदद करता है जो उनके परिवेश से सीधे जुड़ा हो।

मसलन, रामनरेश त्रिपाठी की यह कविता शुरुआती पाठकों के लिए एक बेहतर कविता हो सकती है:

बहुत ज़ुकाम हुआ नंदू को
एक रोज़ वह इतना छींका
इतना छींका इतना छींका
इतना छींका इतना छींका
सब पत्ते गिर गए पेड़ के
धोखा हुआ उन्हें आँधी का।

यह कविता हमारे जीवन के एक बहुत आम अनुभव ज़ुकाम के बारे में है।

ऐसी कविताएँ हमें बच्चों को अपने जीवन में प्रवेश कराने के कई मौके उपलब्ध कराती हैं। शायद ही कोई बच्चा होगा जिसके पास ज़ुकाम का कोई-न-कोई किस्सा नहीं होगा। यह कविता झट से उस अनुभव को जगा देगी। भाषा अपने तमाम पहलुओं के साथ काम में लग जाएगी। बच्चे इस कविता को पढ़ते हुए, एक पैर अपने अनुभवों पर रखे हुए अपना दूसरा पैर कल्पना पर रखने के लिए बढ़ा देंगे। इतना छींका, इतना छींका, इतना छींका ....यह ठेठ बच्चों का किसी बात को बताने का तरीका होता है। वे अकसर इस प्रयोग का इस्तेमाल करते हैं। पेड़ के सब पत्ते गिरने का अनुभव उन्हें है। आँधी का भी है। पर छींक से आँधी आने की कल्पना बेहद आनन्ददाई होगी। ऐसी कविताओं पर बच्चे बार-बार आते हैं।

बच्चों के अनुभव और कल्पनाएँ

इस एक छोटी-सी कविता ने उनके परिवेश की कितनी चीज़ों को एक साथ लाकर खड़ा कर दिया। इस कविता में बच्चों को शामिल होने की कितनी जगहें साफ नज़र आती हैं। जब पेड़ को पता चला होगा कि यह नंदू की छींक थी आँधी नहीं, तब उसे कैसा लगा होगा? कविता की आखिरी पंक्तियों में पेड़ को धोखा हो जाने की बात है। स्कूली किताबें-कॉपियाँ एक जैसी होती हैं। कई बार बच्चे अपनी किताब या कॉपी के धोखे में अपने दोस्त की किताब या कॉपी उठा लाते हैं। इस एक सामान्य घटना पर अब्बास किरस्तामी ने एक बेहद खूबसूरत फिल्म बनाई है। ऐसे कई अनुभवों को यह कविता कक्षा में लाने का एक मौका उपलब्ध कराती है। कविता में अर्थों की झिलमिल भी बनी रहती है। जब एक बच्चा पेड़ को हुए इस धोखे से हँस रहा होगा, तब हो सकता है उसके ठीक बगल में बैठा बच्चा पेड़ के सब पत्ते गिर जाने से उदास हो जाए। पेड़ के सब पत्ते गिर गए होंगे तो क्या पेड़ सूख गया होगा? वह कौन-सा पेड़ होगा? क्या उस पर किसी चिड़िया का घोंसला होगा? हो सकता है कोई बच्चा नंदू की मुश्किल के बारे में सोच रहा हो और कोई यह सोच रहा हो कि अगर नंदू के छींकने से पेड़ के पत्ते गिर गए तो आसपास और क्या-क्या हुआ होगा? क्या सचमुच किसी की छींक से पेड़ के सारे पत्ते झड़ सकते हैं?

साहित्य के रचे इस झूठ ने कल्पना को कितनी उड़ानें दे दीं। बच्चे जब झूठ बोलते हैं तो हम परेशान हो जाते हैं। पर एक तरह से देखें तो वे एक ऐसे आनन्ददाई रियाज़ में लगे हैं जहाँ उन्हें उस घटना को गढ़ने का मौका मिल रहा है जो असल में घट नहीं रही है। इस तरह के झूठ भविष्य के किसी सत्य के खड़े होने के लिए ज़मीन तैयार करते हैं। इसलिए साहित्य के बारे में अकसर कहा जाता है कि वह एक सच प्रकट करने के लिए झूठ पर झूठ गढ़ता चला जाता है। कुल-

मिलाकर कहना यह है कि पढ़ना सिखा रहे शिक्षक को यह कविता पर्याप्त मौके देती है।

एक और कविता का उदाहरण लेते हैं जो बच्चों की बेहद पसन्दीदा कविता बन चुकी है।

चार चने (निरंकारदेव सेवक)

पैसे पास होते तो चार चने लाते
चार में से एक चना तोते को खिलाते
तोते को खिलाते तो टाँव-टाँव गाता
टाँव-टाँव गाता तो बड़ा मज़ा आता।

पैसे पास होते तो चार चने लाते
चार में से एक चना घोड़े को खिलाते
घोड़े को खिलाते तो पीठ पर बिठाता
पीठ पर बिठाता तो बड़ा मज़ा आता।

पैसे पास होते तो चार चने लाते
चार में से एक चना चूहे को खिलाते
चूहे को खिलाते तो दाँत टूट जाता
दाँत टूट जाता तो बड़ा मज़ा आता।
पैसे पास होते तो चार चने लाते।

यह कविता इन्सान की उस शाश्वत इच्छा का विनम्र स्वीकार है कि काश ऐसा होता तो हम फलाँ चीज़ कर लेते। हमारे मनों में रोज़ ही ऐसी लहरें अपने किनारों से टकराकर फिर-फिर लौटती हैं। हम जीवन जीने की शुरुआत को स्थगित किए रहते हैं कि वह जो अब तक न हुआ है पहले वो हो जाए। हमारी दुनिया में एक बेहद बड़ी संख्या उन लोगों की है जिनका तो जैसे जीवन ही इस बढ़त के साथ शुरू होता है कि पैसे पास होते तो.... उनका जीवन ही जैसे रागों के लगने से रह जाने में ही पूरा बीत जाता है।

बचपन भी बेहद बन्दिशों में लिपटा दौर होता है। वहाँ भी इच्छाओं की बढ़त का अनन्त है और वहाँ भी बार-बार राग पाते-पाते रह जाने की मन की सिमटन है। इसीलिए शायद यह बच्चों की बेहद पसन्दीदा कविता बन चुकी है। ऊपरी तौर पर देखें तो उसकी बुनावट में अनुप्रास का चमत्कार भी है - पैसे-पास का और चार-चने का।

रुचि त्रिवेदी, 9 वर्ष, भोपाल

दोहरावों में भाषा के खेल

हमारा सारा सीखना ही दोहरावों से भरा पड़ा है। बचपन में एक शब्द तक पहुँचने के लिए उस शब्द के आसपास आ-आकर ठहर जाते हैं। उसके आस-पड़ोस के शब्दों तक जाते हैं। एक तरह से उस शब्द तक पहुँचने के रास्ते पर बार-बार आना-जाना होता है। और बार-बार आकर और वापिस चले जाकर हम उस शब्द को सीखते हैं। इस कविता के अर्थों में ही नहीं, उसकी बाहरी बुनावट में भी गज़ब का दोहराव है। हम बुनावट को समझने लगते हैं और कविता जहाँ खत्म हो जाती है उससे एक कदम बढ़ाकर कहते हैं कि पैसे पास होते तो चार चने लाते... चार में से एक चना किसी को खिलाते... किसी को खिलाते तो वह कुछ करता... वह कुछ करता तो बड़ा मज़ा आता।

यह दोहराव हमें अपनी लोक-कथाओं की याद भी दिलाता है जिसमें कथा आठ-दस चरणों में चलती है। हर चरण से पहले कथा पूर्व के हर चरण को फिर से दुहराती है। पढ़ना सीख रहे बच्चों के लिए ये लोक-कथाएँ एवं दोहराव की तासीर वाली कविताएँ बहुत भाती होंगी। इसलिए भी कि इनमें भाषा का एक खेल चलता रहता है। जैसे वे झूला झूलते हैं। हर बार झूला नई ऊँचाई पर जाता है। पर हर बार वापिस उसी पुराने रास्ते पर भी आता है। बार-बार आगे बढ़ना और बार-बार वहाँ चले जाना जहाँ से चलना शुरू किया था। लोक-कथाओं के इस दोहराव वाले तत्व में एक और तरह की गुंजाइश भी छुपी हुई है। ये कथाएँ उन्हें सुनने आ रहे पाठक का अपनी पंक्ति तक इन्तज़ार करती हैं। और जब कहानी अपने चरम या अन्तिम दौर में पहुँच जाती है तब भी वह एक बार फिर अपनी उस सबसे पहली पंक्ति तक आती है जहाँ से वह कभी शुरू हुई थी। जैसे हर चरण में वह थोड़ी आगे बढ़ती है और फिर अपने अभी-अभी जुड़े नए पाठक के लिए दुबारा शुरू से कथा सुनाने चली आती है। 'बुढ़िया की रोटी' कहानी की बुढ़िया को ले लीजिए। वह पेड़ के पास जाती है कि कौआ उसकी रोटी ले गया है। फिर वह लकड़हारे के पास जाती है। पर लकड़हारे को वह यह बताना नहीं भूलती कि वह पहले पेड़ के पास गई थी। और पेड़ ने उसे मदद करने से मना कर दिया है।

जीवन में चार चनों का क्या मोल? तो यह कविता एक किस्म की बेमतलबी का जादू रचती है। इसी फिज़ूलियत जिसे नॉनसेंस कहते हैं की वजह से इस कविता में अतिरिक्त मिठास आ गई है। सिर्फ चार चने में से एक चना खिलाने की बात नहीं है, बल्कि कविता की पूरी बुनावट ही नॉनसेंसिकल है। एक चने का तोते को खिलाना और उसका टाँव-टाँव गाना। और टाँव-टाँव गाने से मज़े का आना। या चूहे के चने चबाने से उसके दाँतों का टूटना और उसमें मज़ा आना। अगर

इस कविता का स्वभाव नॉनसेंसिकल न होता तो चूहे के दाँत टूटने पर मज़े आने की बात खटकती। पर कविता की अन्तर्वस्तु हमें चुपचाप यह बात बता देती है कि इसमें मतलब निकालने की ज़रूरत नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे - लकड़ी की काठी वाले गीत में *घोड़े की दुम पे जो मारा हथौड़ा* में है। ऐसी कविताएँ पढ़ना सीख रहे बच्चों के लिए कमाल का काम करती दिखती हैं। इनमें बच्चों के शामिल होते चले जाने की असंख्य जगहें हैं। कभी आपने इस बात पर गौर किया है कि हम सभी को ये फिज़ूलियत भरी रचनाएँ क्यों पसन्द आती हैं? शायद इसलिए कि जहाँ अच्छे साहित्य में पाठक को शामिल होने के लिए जगह-जगह खाली स्थान रहते हैं, वहीं एक नॉनसेंस रचना पूरी-की-पूरी पाठक के लिए ऐसी रिक्तियों से भरी पड़ी रहती है। रिक्तियों से बुनी, अर्थों से खाली कविता।

पैसे पास होते तो... एक जुदा कहानी

आपको याद है एक महान कहानी - ईदगाह - में हामिद के पास कितने पैसे होते हैं? पर वह कहानी इस कविता के ठीक उलट खड़ी रहती है। वह यथार्थ का चित्रण करती है। उसमें भी इस कविता का स्वभाव है। साहित्य व कलाओं खास तौर पर संगीत, चित्रकला आदि में वह स्पष्ट दिखता है। किसी बात को कहने के लिए उसका इर्द-गिर्द रचते जाना। और हर बार उसका इर्द-गिर्द रचते हुए उसके करीब पहुँचते जाना। रचना के तत्व के इर्द-गिर्द तक बार-बार पहुँचते-पहुँचते एक ऐसा चरम आता है जब कोई इर्द-गिर्द बाकी नहीं बचता। हम रचना तक पहुँच जाते हैं। रचना में असल मज़ा तत्व तक पहुँचने के लिए रचे गए इर्द-गिर्द के संघर्ष में है। हामिद क्या खरीदता है वह इतना आनन्द पैदा नहीं करता, जितना यह कि वह क्या-क्या खरीद सकता था पर नहीं खरीदता। यह इर्द-गिर्द ही तो आखिर में हामिद के चिमटा खरीदने को मीठा बनाता है। यह एक सार्थक रचना है। तर्क पेश करती है। हामिद का यह व्यवहार हमें कृत्रिम लग सकता था अगर यह रचना उद्घाटित नहीं करती कि अमीना के अलावा हामिद का इस दुनिया में कोई नहीं है। यानी हामिद को बचपन नसीब नहीं हुआ। वह जीवन के संघर्ष में अपनी उमर से पहले ही बड़ा हो गया है। और वह बताता है कि ऐसे बच्चे और उनके परिवार आग से खेलते हुए रोटी हासिल करते हैं। हामिद उसी रोटी को पकड़ने के लिए ही तो चिमटा खरीदता है। चिमटा देखकर अमीना की आँखें क्यों भरती हैं? क्या यह सोचकर कि कैसे हामिद उमर से पहले ही वयस्क हो गया? साहित्य अपनी इन तमाम सम्भावनाओं के साथ पाठक के समक्ष प्रस्तुत होता है। भाषा अपने तमाम छरहरे रूप में साहित्य में सामने आती है। यह हमारी नाकामयाबी रही है कि हम साहित्य के इन गुणों को बच्चों के लिए लिखी ज़्यादातर रचनाओं में

शामिल नहीं रख पाए। साहित्य एक ऐसी जगह की तरह बच्चों के सामने पेश आए जिसमें उन्हें लुका-छिपी का खेल खेलने के लिए छुपने की पर्याप्त जगहें उपलब्ध हों।

***

हलीम चला चाँद पर...

"हलीम ने एक दिन सोचा, आज मैं चाँद पर जाऊँगा। वह रॉकेट के कारखाने में गया और एक रॉकेट पर बैठकर चल दिया। चलते-चलते अँधेरा हो गया। हलीम को डर लगने लगा। उसको तो चाँद तक का रास्ता पता नहीं था। थोड़ी देर में उसे चाँद दिखा। और वह खुश हो गया। चाँद पर हलीम को खूब सारे गड्ढे दिखे और बड़े-बड़े पहाड़ भी। लेकिन वहाँ कोई पेड़ या जानवर नहीं थे। लोग भी नहीं थे। हलीम ने सोचा, यह भी कोई जगह है। चलो वापिस घर चलें। वह रॉकेट में बैठकर घर लौट आया।"

चाँद बच्चों का बेहद पसन्दीदा है। चाँद एक दूरी है। वे सारी चीज़ें जो दिखती तो अकसर हैं पर उन्हें हासिल नहीं किया जा सकता। चाँद ऐसी सारी इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करता है। दिन में बच्चे बाहर खेल-कूद सकते हैं। पर रात में तो उन्हें घर ही रहना पड़ता है। बाहर न जा पाने की मजबूरी में चाँद दिखता है। रात में बाहर निकला हुआ।

यह कहानी चाँद पर चले जाने की है। हलीम ने एक दिन सोचा, चाँद पर जाऊँगा। यह पंक्ति दुनिया के हर बच्चे की मन की बात होते हुए भी एक बेहद निजी बात बनी रहती है। क्योंकि हर बच्चे के मन में चाँद की एक अलग तस्वीर होती है। चाँद के अलग अनुभव होते हैं। और चाँद से मिलने के रास्ते भी अलग। ज़्यादातर साहित्य में किसी-न-किसी रूप में चाँद ही बच्चों के पास आता है। पर यहाँ चाँद से मिलने के लिए खुद चले जाने की कथा है। बच्चों के इतने सक्रिय किरदार कम देखने में आते हैं। इस किताब के चित्र बेहद रोचक हैं। और उनसे मिलकर कहानी पूरी होती है। किताब के पहले ही पन्ने पर हलीम

झाड़ू से कचरा बुहार रहा है। और चाँद-सितारों के बारे में सोच रहा है। झाड़ू लगाने के विवरण तो हमारे हिन्दी समाज की बड़ी-बड़ी किताबों से गुम हैं। जैसे यह कोई काम ही न हो। झाड़ू लगाना बच्चों का पसन्दीदा पहला-पहला काम होता है जिसमें उन्हें इस बात पर इतराने का मौका मिलता है कि वे बड़ों के कामों में से कुछ खुद निपटा सकते हैं। वे कामों को खेलने की जगह उन्हें सचमुच करना चाहते हैं। खैर, तो इस किताब में बच्चे समझ जाते हैं कि असल में

हलीम उन्हीं की तरह चाँद पर चले जाने के सपने देख रहा है। चाँद का रास्ता भले ही उनका जाना-पहचाना नहीं है पर हलीम जिस रास्ते पर चल रहा है वह उनका जाना-पहचाना है। क्योंकि वे खुद अकसर इस रास्ते से चाँद पर आया-जाया करते हैं। अकसर बच्चों की या कई बार तो बड़ों की किताबों में भी यह स्पष्ट रूप से चित्र बनाकर दिखा देते हैं कि अब फलाँ किरदार सपने देख रहा है। और जो बात कही जा रही है वह उसके सपने में कही जा रही है। पर इस किताब में ऐसा नहीं है। यह किताब पाठकों पर ज़्यादा भरोसा करती है।

साहित्य में यह गुंजाइश बनी रहती है कि वह सुदूर सपने की बात को आज में विश्वसनीय रूप से घटित होता हुए दिखा देता है। यानी खेल, सपने और यथार्थ को यह किताब एक ही तल पर लाकर खड़ा कर देती है। हलीम झाड़ू पर बैठकर चाँद पर चला जाता है। रास्ता लम्बा है। क्योंकि वहाँ जब पहुँचे तब तक रात हो चुकी है। रात हुई तो चाँद निकला। तभी तो पता चला कि चाँद है कहाँ। वरना दिन में पहुँचते तो पता कैसे चलता? पर इस खेल में चाँद पर जाना है। इसलिए इस खेल का अन्त यह नहीं हो सकता कि हलीम वहीं रुक जाए। क्योंकि हलीम तो अपने घर पर झाड़ू लगा रहा है। उसे जल्दी ही अपने इस खेल को खत्म कर दूसरा खेल खेलना है। या कोई और सपना देखते हुए काम पर लग जाना है। यानी उसे वापिस धरती पर आना है। पर वह क्यों वापिस आए? क्योंकि चाँद पर तो गड्ढे-पहाड़ हैं... कोई जानवर नहीं, कोई पेड़ नहीं, लोग नहीं... भला यह भी कोई रहने की

जगह हुई। यह किताब बताती है कि वह भले ही बच्चों के खेल-खेल की कहानी हो पर उसमें एक तर्क होना चाहिए। यह बात भी उसे याद रहती है कि रहने लायक दुनिया सिर्फ इन्सानों से ही नहीं बन जाती है। वह एक ऐसी दुनिया की तरफ लौटना चाहता है जहाँ इन्सानों के साथ-साथ पेड़ और जानवर भी होंगे। 'हलीम चला चाँद पर' नाम की यह किताब बच्चों के स्वभाव की किताब है। जैसे घर के बाहर एक आँगन होता है। घर के सबसे नज़दीक का बाहर। जहाँ बच्चों को बाहर चले जाने का रियाज़ करने का मौका मिलता है। यह किताब एक तरह से सिफारिश करती है कि स्कूल से लगा उसका एक आँगन होना चाहिए जहाँ बच्चे उससे बाहर निकलना सीख पाएँ। स्कूल के सबको एक तरह से सम्बोधित करने के माहौल के बीच साहित्य एक ऐसे कोने की तरह स्थापित हो सकता है जहाँ वह एक-एक बच्चे को पहचान कर उससे बात कर सके।

एक बात और...

बच्चों को पढ़ना सिखाने में कहानियाँ-कविताएँ सुनाना बेहद उपयोगी हो सकता है। पर यह ज़रूरी है कि साहित्य ऐसा हो जिसमें वे तमाम सम्भावनाएँ हासिल हों जिनके बारे में थोड़ी बातचीत हम ऊपर कर चुके हैं। ऐसा साहित्य पाठक को खुद की एक दुनिया की कल्पना करने को उकसाता है। रचना में शामिल पाठक अनजाने ही रचना में डूबता-उतराता रहता है। वह अपनी तमाम इच्छाओं के साथ रचना में दाखिल हो जाता है। वह वहाँ स्वतंत्र रूप से घूमना-फिरना चाहता है। उसे रचना में विचरते समय किसी का साथ मंज़ूर नहीं। एक साहित्य के अलावा खुद के इतने करीब चले आने की गुंजाइश और कहाँ हासिल होती है? एक तरह से पाठक इस यात्रा में नए सिरे से खुद को पहचानता है। वह खुलकर अपने सामने प्रस्तुत होता है। बच्चे अकसर इस दुनिया में प्रवेश चाहते हैं। जहाँ वे पहले बड़ों के साथ गए थे, वहाँ वे अकेले जाना चाहते हैं। वे रचना में अपनी पसन्द की जगह थोड़ा ठहरना चाहते हैं। वे किसी खास हिस्से को दुबारा सुनना चाहते हैं। वे जहाँ मन करे उस जगह, कहानी को अपनी तरह पढ़ना चाहते हैं। एक नए अर्थ में। जहाँ वही सच हो जो वे सच समझते हैं। पर ऐसा मौका तो तब मिलेगा जब वे उसे खुद पढ़ना सीख जाएँगे। यह ललक बच्चों को जल्दी पढ़ना सीखने के लिए प्रेरित करती होगी।

सुशील शुक्लः 'चकमक' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।